प्रतिहारवंशीय संस्कृत अभिलेखों में प्रकृति-वर्णन

सुषमा भारद्वाज

भारतीय वाङ्मय में प्रकृति शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग मिलता है। सांख्य दर्शन में इसे सृष्टि तो गीता में माया के रूप में चित्रित किया गया है। यथा- प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। (श्रीमद्भगवद्गीता - 3.27)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ''प्रवर्तता प्रकृतिहितायपार्थिवः'' (7.35) कहकर 'प्रजा' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, वहीं मेघदूतम के पूर्वमेघ में विचारशून्य के अर्थ में प्रकृति शब्द का प्रयोग किया है - 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।''

भर्तृहरि ने 'नीतिशतकम्' में इसे स्वभाव के अर्थ प्रयोग करते हुए कहा है- ''प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।'' (नीतिशतकम्, श्लोक-63)

वास्तव में सर्जनात्मक विश्व की अभिव्यक्ति ही प्रकृति है और प्रकृति की इस व्याख्या में विश्व का सारा विस्तार आ जाता है। प्रकृति के परम्परागत अर्थ में भी समस्त जगत् के और बाह्य जगत् के पदार्थों को प्रकृति के अन्तर्गत माना जाता है। जैसे - हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, न-नदीश, बाग-बगीचे, लता-तरु, खग-मृग, सूर्य-चन्द्र, खेत-खलिहान आदि सभी आ जाते हैं।

प्रकृति की शास्त्रीय विवेचना

प्रकृति शब्द 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है प्रकरण अथवा सन्दर्भ। यथा – ''स्त्री प्र + कृ कर्त्तरि – क्तिच् भावादौ क्तिन् वा'' (वाचस्पत्यम् कोषः'' पृ. 4427)

किन्तु लोक-व्यवहार में प्रकृति से तात्पर्य प्रकरण अथवा सन्दर्भ से न लेकर पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नद-नदीश आदि दृश्यमान पदार्थों से लिया जाता है। वास्तव में यह आवश्यक नहीं है कि शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ और लोक व्यवहृत्-अर्थ में साम्य हो। साहित्य दर्पण में भी इसकी पुष्टि होती है – ''अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमन्यच्च प्रवृत्तिनिमित्तम्।'' – सा.द. 2-5

लोकव्यवहार में प्रचलित शब्द के अर्थ से धातुगत अर्थ का संस्पर्श पूर्णतः अथवा अंशतः किसी न किसी रूप में अवश्य होता है। प्रकृति भी अपने धातुगत अर्थ से एकदम पृथक् नहीं है क्योंकि समस्त जगत् का आधारभूत प्रकरण अथवा सन्दर्भ ही प्रकृति है।

प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं, जिन्हें मनुष्यों ने सजाया या संभाला नहीं है, अपितु जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती है। (हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण – डा. किरण कुमारी गुप्ता, पृ. 10)

काव्य में प्रकृति विविध रूपों में हमारे सम्मुख आती है। प्रकृति के इन विविध प्रयोगों का तात्पर्य मात्र प्रकृति-चित्रण अथवा सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना नहीं होता, वरन् ये प्राकृतिक पदार्थ 'अभिव्यक्ति' में भी सहायक होते हैं। प्रकृति-चित्रण में प्राकृतिक

पदार्थों के माध्यम से सुख-दु:ख आदि अनुभूतियों, जीवन की असारता, क्षणिकता आदि शाश्वत् तथ्यों, सम-विषम परिस्थितियों आदि की अभिव्यक्ति होती है।

प्रतिहारवंशीय अभिलेखों का उद्देश्य प्रकृति-वर्णन न होने के कारण इन अभिलेखों में प्रसंगवश ही प्रकृति-वर्णन हुआ है। इन अभिलेखों में आलम्बन-रूप और अलंकारिक रूप प्रकृति के ही उदाहरण मिलते हैं। अत: उन्हीं का विवरण दिया गया है -

1. **आलम्बन रूप** -

प्रतिहारवंशीय अभिलेखों में आलम्बन रूप प्रकृति का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। यथा - गुर्जर-प्रतिहार राजा बाउक की जोधपुर प्रशस्ति में निर्झर (बहती हुई) पवित्र नदी से सुशोभित माण्डव्याश्रम का मनोहारी-चित्रण प्रस्तुत किया गया है- ''स्वयंञ्च संस्थित तात: शुद्धं धर्म्म समाचरन्। माण्डव्यस्याश्रमे पुण्ये नदी निर्ज्झर शोभिते।'' (आर.सी. मजूमदार, ए.इ., भाग-18, 1925, पृ. 96)

इसी अभिलेख में गंगाद्वार अर्थात् हरिद्वार नामक तीर्थस्थल पर जाने का भी उल्लेख किया गया है -

''गंगा द्वारं ततो गत्वा वर्षाण्यष्टादश स्थित:

.....।''

(आर.सी. मजूमदार, ए.इ., भाग-18, 1925, पृ. 96)

आलम्बन रूप प्रकृति का निम्न उदाहरण भी द्रष्टव्य है -

''याते यामवतीपतो शि (खरिषु चामे) षु सर्वात्मना

ध्वस्ते ध्वान्तरिपो जने विघटिते स्रस्ते च तारागणे।

भ्रष्टे भूवलये गतेषु च तथा रत्नाकरेष्वेक्रता-

मेको यस्स्वपिति प्रधानपुरुष पायात्स वः शाङ्र्गभृत्।।''

(जी. व्यूहलर - ए.इ., भाग-1, 1888, पृ. 244-45)

गुर्जर-प्रतिहार नरेश भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में आकाश और नदी का उल्लेख मिलता है -

''यावन् नभः सुर सरित प(प्र) सर वीत्तरीयं

.....।।''

(आर.सी. मजूमदार, ए.इ., भाग-18, 1925, पृ. 110)

कन्नौज नरेश महेन्द्रपालकालीन बलवर्मन् के ऊना से प्राप्त ताम्रपत्र अभिलेख में कमल के पत्ते पर स्थित जल की बूँद की समान चंचल लक्ष्मी का मनोहर वर्णन किया गया है -

पदम् पत्ते (पत्र स्थित जलवत् तरला श्रीर् (स्थित जल (वत्) तरला श्री दृष्ट-नष्टञ् च जीवितं (:)। पद्मपत्र जलबिंदुचंचलं जीवितव्यमाखिलाश् च सम्पदः। (एफ. कीलहार्न - ए.इ., भाग-9, 1907-08, पृ. 15)

महेन्द्रपालकालीन अवनिवर्मन् (II योग) के प्रथम पत्र में शास्त्रो में वर्णित प्रसिद्ध कल्प एवं पारिजात नामक वृक्षों का उल्लेख किया गया है –

''कांत्या महत्या स्थिरया श्रिया व (च) कल्प-द्रुमाणमिव पारिजात:।।''

(एफ.कीलहार्न – ए.इ., भाग–9, 1907–08, पृ. 7)

महेन्द्रपालकालीन अवनिवर्मन् (II योग) के पत्र में ही संसार को उत्पन्न करने वाले, विश्व की आत्मा, आकाश के स्वाभाविक आभूषण, सोने के समान और शीघ्रगामी हज़ार किरणो की माला से अर्चना किए जाने वाले प्रात:कालीन सूर्य 'सविता' का चित्रण किया गया है –

''जगतां प्रसूतिर् विश्वात्मा सहज भूषणं नभस:।

द्रुतकनकसदृश दशशतमयूख मालार्चत: सविता।।''

(एफ.कीलहार्न – ए.इ., भाग–9, 1907–08, पृ. 7)

इसी अभिलेख में कर्णवीरिका नदी के पास की भूमि का दान करते हुए प्राकृतिक पदार्थों का भी स्वभावत: ही उल्लेख किया गया है –

''आचंद्रार्क्ष् (र्क्क) आर्ण्णव क्षिति सरित् पर्वत समकालीन: इहैव जयपुर ग्रामाभ्यासे कर्णवीरिका सरिद् उपकण्ठे निविष्ट ..... भूमिच्छिद्रन्यायेन प्रबि (ति) पादितस्।।''

(एफ.कीलहार्न – ए.इ., भाग–9, 1907–08, पृ. 10)

महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ प्रस्तराभिलेख में भी पवित्र दिन में गंगा नदी में स्नान करने का उल्लेख किया गया है – ''गंगायां स्नात्वा पुन्ये (ण्ये) (ऽ) हनि.....।'' (पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा– ए.इ., भाग–14, 1917–18, पृ. 184)

इसी अभिलेख में नन्द्या नदी का भी उल्लेख प्राप्त होता है जो कि दान में दिए जाने वाले बबूलिका नामक कच्छ के उत्तर में पड़ती थी –

''..... उत्तरस्यां दिशि नन्द्या नदी समीपवर्त्तिनी (स) मेत्ताघाटतै सहायं व (ं) व्वूलियको नाम कच्छो अस्माभि: प्रदत्त:।'' (पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा– ए.इ., भाग–14, 1917–18, पृ. 187)

भोजदेव कालीन ग्वालियर अभिलेख (वि.सं. 933) में दल्लकवाहित खेत में वृक्षों का उल्लेख है – ''..... पश्चिमेन दल्लकवाहितक्षेत्रे पादपा: .....।'' (आर.एल. मित्र, ज.ए.सो.ब., भाग–31, 1862, पृ. 408)

कक्कुक के घटियाला अभिलेख में दिन, रात और सन्ध्या का उल्लेख प्राप्त होता है – ''ओं सिद्धि: (1) दिवा रात्रौ च सन्ध्यायां .....।'' (डी.आर. भण्डारकर – ए.इ., भाग–9, 1907–08, पृ. 280)

इसी अभिलेख में शरद्कालीन चन्द्रमा तथा मालती नामक लता (जिसके पुष्प अत्यन्त सुगन्धित होते हैं) का उल्लेख है –

''ओं (1) वल्लकी काकलीगीतं शरच्चन्द्रश्च मालती।

विनीता स्त्री सतां गोष्ठी कक्कुकज्ञस्य पृयाणि षट्।।''

(डी.आर. भण्डारकर - ए.इ., भाग-9, 1907-08, पृ. 281)

राजा भोज के बर्टोन म्यूज़ियम अभिलेख में चन्द्ररेखा एवं देवताओं की नदी (गंगा) का उल्लेख मिलता है -

''..... वपुरिदमखिलंचन्द्ररेखा मदीयं ..... यस्य प्रदुग्धा सुरस (रि) त इव श्रोत्र .....।'' (डी.बी. डिस्कलकर - ए.इ., भाग-19, पृ. 175)

महिपालदेव के चाप महासामन्ताधिपति धरणीवराह के हड्डाला पत्र में पवित्र आकाश नदी (गंगा) के बहते जल से चन्द्रमा की किरणों से शीतल सत्पुष्प का और स्वर्णकमल के समूह का मनोहर चित्रण है -

''ओं पुण्यं व्योमसरिज्जलेनं बहता चन्द्रांशुभिः शीतलं सत्पुष्पं कनकारविन्दनिचयो निर्व्बाण ..... ।।'' (जी. व्यूहलर - इ.ए., भाग-12, 1883, पृ. 113)

वि.सं. 1016 के राजौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि मथनदेव ने व्याघ्रपाटक गाँव को उसके साथ जुड़ी हुई गोचर भूमि, घास, वृक्ष इत्यादि सहित लच्छुकेश्वर महादेव के मंदिर के लिए दान मे दे दिया। (एफ. कीलहार्न - ए.इ., भाग-3, 1894-95, पृ. 266) इससे पता चलता है कि राजा लोग प्राकृतिक पदार्थों यथा- घास, वृक्ष, भूमि आदि का भी दान करते थे।

भोजदेव के अहार अभिलेख में सोम (चन्द्र) ग्रहण के अवसर गंगा में स्नान करने का वर्णन आया है –

''.....सोमग्रहणे गंगादेव्यां स्नात्वा मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिः (भि) वृध्च (द्धन) र्थ .....।'' (दयाराम साहनी, ए.इ., भाग–19, पृ. 59)

इस प्रकार ज्ञात होता है कि प्रतिहारवंशीय अभिलेखों में आलम्बन रूप प्रकृति का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

अलंकारिक रूप

प्रतिहार अभिलेखों में रूपक, उत्प्रेक्षा एवं उपमा आदि अलंकारों के माध्यम से अलंकारिक रूप प्रकृति का पर्याप्त वर्णन उपलब्ध होता है। उदारणार्थ – 'नरमृगा' (आर. सी. मजूमदार – ए.इ., भाग–18, 1925, पृ. 96) अर्थात् मनुष्य (शत्रु सैनिक) रूपी हिरण, 'संसार–सागरं' (एफ. कीलहार्न – ए.इ., भाग–18, 1889, पृ. 34–35) अर्थात् संसार रूपी सागर, 'कोप–वह्नि' (आर.सी. मजूमदार – ए.इ., भाग–18, 1925, पृ. 109) अर्थात् क्रोध रूपी अगिन एवं 'नृकुरंगाः' (आर.सी. मजूमदार – ए.इ., भाग–18, 1925, पृ. 97) अर्थात् मनुष्य (सैनिक) रूपी हिरण आदि अनेक उदाहरणों में रूपक अलंकार के माध्यम से प्रकृति चित्रण किया गया है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से प्रकृति–चित्रण भी अत्यन्त दर्शनीय है –

''ननु समर धरायां वाउके नृत्यमाने

शव तनु सकलान्त्रेश्वेव विन्यस्त पादे

सममिव हि गतास्ते तिष्ठतिष्ठेति गीताद्

भय गत नृ कुरंगाश्चित्रमेत्तदासीत्।।31।।''

(आर.सी. मजूमदार – ए.इ., भाग–18, 1925, पृ. 97)

इसी प्रकार उपमा अलंकार के माध्यम से भी प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया गया है –

''तस्यासी (न्मनिका साध्वी) भार्या (शेष) गुणान्विता हरत्यघ नृणां याता या गंगेव .....।'' (डी.बी. डिस्कलरकर – ए.इ., भाग–19, पृ. 176)

अर्थात् उसकी गुणों से युक्त पत्नी थी जो लोगों के दुखों (कष्टों/पापों) का गंगा के समान हरण करती थी। यहाँ 'राजा की पत्नी' उपमेय है, 'गंगा' उपमान है 'दु:खों का हरण करना' साधारण धर्म है तथा 'इव' (समान) उपमा वाचक शब्द है। अत: यहाँ उपमा अलंकार है। इसका अभिप्राय है कि जिस प्रकार गंगा नदी (गंगा में) स्नान करने वाले के पापों का हरण कर लेती है उसी प्रकार राजा की पत्नी भी लोगों के दु:खों या कष्टों का हरण कर उन्हें दु:खों या कष्टों से मुक्त कर देती थी। यहाँ प्रकृति–वर्णन अत्यन्त मनोहारी है, जो लेखक के प्रकृति–प्रेमी होने का भी परिचायक है।

इस प्रकार रूपक, उत्प्रेक्षा एवं उपमा आदि अलंकारों के माध्यम से प्रकृति का अलंकारिक रूप वर्णन हमें प्रतिहारवंशीय अभिलेखों में प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रतिहारवंशीय अभिलेखों में प्रकृति का आलम्बन रूप एवं अलंकारिक रूप वर्णन प्राप्त होता है परन्तु उन अभिलेखों में हमें कहीं भी उद्दीपनरूप प्रकृति का वर्णन नहीं मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि यद्यपि अभिलेखों में प्रकृति वर्णन हेतु कहीं भी अवसर न होने पर भी शिलालेखकारों ने यत्र-तत्र आलम्बन-रूप एवं अलंकारिक रूप प्रकृति-वर्णन किया है। इससे शिलालेखकारों के प्रकृति-प्रेमी होने का पता चलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ-जर्नल्स

1. एपिग्राफिया इंडिका

2. इंडियन ऐंटीक्वेरी

3. जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाईटी ऑफ बंगाल

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत व हिन्दी पुस्तकें

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास, भार्गव पुस्तकालय, वाराणसी-1, पञ्चम संस्करण, संवत् 2025

2. नीतिशतकम् – भर्तृहरि, भर्तृहरि स्मारिका मिशन, दिल्ली, 1977

3. वाचस्पत्यम् कोषः – तारानाथ तर्कवाचस्पति, चौखम्बा सीरीज़, वाराणसी, 1962

4. मेघूदतम् – कालिदास, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1970

5. श्रीमद्भगवद्गीता – गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2024

6. साहित्यदर्पणः – विश्वनाथः, व्याख्याकारः – आचार्य कृष्णमोहन शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 1985

7. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण – डॉ. किरण कुमारी गुप्ता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत्, 2006